इस्लाम
का
असल मेयार

मौलाना सय्यद अबुल-आला मौदूदी (रह.)

बिसमिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम

"अल्लाह के नाम से जो निहायत मेहरबान बहुत रहमवाला है।"

इस्लाम का असूल मेयार

अल्लाह तआला अपनी किताब में फ़रमाता है—

"(ऐ मुहम्मद) कहो, मेरी नमाज़, मेरी इबादत के सारे तरीक़े, मेरा जीना और मेरा मरना सब कुछ अल्लाह के लिए है जो सारी कायनात का मालिक है, जिसका कोई शरीक नहीं। इसी का मुझे हुक्म दिया गया है और सबसे पहले मैं उसकी फ़रमाँबरदारी में सिर झुकानेवाला हूँ।"

(क़ुरआन, 6:162-163)

इस आयत की तशरीह नबी *(सल्ल.)* के इस इरशाद से होती है—

"जिसने किसी से दोस्ती व मुहब्बत की तो अल्लाह के लिए, और दुश्मनी की तो अल्लाह के लिए, और किसी को दिया तो अल्लाह के लिए, और किसी से रोका तो अल्लाह के लिए, उसने अपने ईमान को पूरा कर लिया, यानी वह पूरा मोमिन हो गया।"

पहले जो आयत मैंने आपके सामने पेश की है उससे मालूम होता है कि इस्लाम का तक़ाज़ा यह है कि

इनसान अपनी बन्दगी और अपने जीने और मरने को सिर्फ़ अल्लाह के लिए ख़ालिस कर ले और अल्लाह के सिवा किसी को इसमें शरीक न करे, यानी न उसकी बन्दगी अल्लाह के सिवा किसी और के लिए हो और न ही उसका जीना और मरना।

इसकी जो तशरीह नबी *(सल्ल.)* की ज़बान से मैंने आपको सुनाई है, उससे मालूम होता है कि आदमी की मुहब्बत और दुश्मनी और अपनी दुनयवी ज़िन्दगी के मामलों में उसका लेन-देन सिर्फ़ खुदा के लिए होना ईमान का ऐन तक़ाज़ा है। इसके बग़ैर ईमान ही पूरा नहीं हुआ, ऊँचे-ऊँचे रुतबों का दरवाज़ा खुल सकना तो दूर की बात है। जितनी कमी इस मामले में होगी, उतनी ही कमी आदमी के ईमान में होगी, और जब इस हैसियत से आदमी पूरे तौर पर अल्लाह का हो जाए तब कहीं उसका ईमान मुकम्मल होता है।

कुछ लोग यह समझते हैं कि इस क़िस्म की चीज़ें सिर्फ़ ऊँचे-ऊँचे रुतबों का दरवाज़ा खोलती हैं, वरना ईमान और इस्लाम के लिए इनसान के अन्दर यह कैफ़ियत पैदा होना शर्त नहीं है। यानी दूसरे लफ़्ज़ों में इस कैफ़ियत के बिना भी इनसान मोमिन व मुस्लिम हो सकता है, मगर यह एक ग़लतफ़हमी है और इस ग़लतफ़हमी के पैदा होने की वजह यह है कि आम तौर पर लोग फ़िक़ही और क़ानूनी इस्लाम और उस हक़ीक़ी

इस्लाम में जो अल्लाह के यहाँ मोतबर है, फ़र्क़ नहीं करते।

फ़िक़ही और क़ानूनी इस्लाम में आदमी के दिल का हाल नहीं देखा जाता और न ही देखा जा सकता, बल्कि सिर्फ़ उसके ज़बानी इक़रार को और इस चीज़ को देखा जाता है कि वह अपने अन्दर उन ज़रूरी निशानियों को ज़ाहिर करता है या नहीं जो ज़बानी इक़रार की पुख़्तगी के लिए ज़रूरी हैं। अगर किसी शख़्स ने ज़बान से अल्लाह और रसूल और क़ुरआन और आख़िरत और ईमान की दूसरी बातों को मानने का इक़रार कर लिया और इसके बाद ज़रूरी शर्तें भी पूरी कर दीं, जिनसे उसके मानने का सुबूत मिलता है, तो वह इस्लाम के दायरे में शामिल कर लिया जाएगा और सारे मामले उसके साथ मुसलमान समझकर किए जाएँगे, लेकिन यह चीज़ सिर्फ़ दुनिया के लिए है और दुनयावी हैसियत से वह क़ानूनी और तमद्दुनी (नागरिकता सम्बन्धी) बुनियाद जुटाती है जिसपर मुस्लिम सोसाइटी की तामीर की गई है। इसका हासिल इसके सिवा कुछ नहीं है कि ऐसे इक़रार के साथ जितने लोग मुस्लिम सोसाइटी में दाख़िल हों वे सब मुसलमान माने जाएँ, इनमें से किसी को काफ़िर न ठहराया जाए, इनको एक-दूसरे पर शरई, क़ानूनी, अख़लाक़ी और समाजी हक़ हासिल हों, इनके बीच शादी-ब्याह के ताल्लुक़ात क़ायम हों, जायदाद तक़सीम हो और दूसरे तमद्दुनी रवाबित वुजूद में आएँ।

लेकिन आख़िरत में इनसान की नजात और उसका मुस्लिम व मोमिन क़रार दिया जाना और अल्लाह के मक़बूल बन्दों में गिना जाना इस क़ानूनी इक़रार पर मुनहसिर नहीं है, बल्कि वहाँ असल चीज़ आदमी का क़ल्बी इक़रार, उसके दिल का झुकाव और उसका राज़ी-ख़ुशी अपने आपको पूरे तौर पर ख़ुदा के हवाले कर देना है। दुनिया में जो ज़बानी इक़रार किया जाता है, वह तो सिर्फ़ शरई क़ाज़ी के लिए और आम इनसानों और मुसलमानों के लिए है, क्योंकि वे सिर्फ़ ज़ाहिर ही को देख सकते हैं। मगर अल्लाह आदमी के दिल को और उसके बातिन को देखता है और उसके ईमान को नापता है। उसके यहाँ आदमी को जिस हैसियत से जाँचा जाएगा, वह यह है कि क्या उसका जीना और मरना और उसकी वफ़ादारियाँ और उसकी फ़रमाँबरदारी व बन्दगी और उसकी ज़िन्दगी का पूरा कारनामा अल्लाह के लिए था या किसी और के लिए? अगर अल्लाह के लिए था तो वह मुस्लिम और मोमिन क़रार पाएगा और अगर किसी और के लिए था तो न वह मुस्लिम होगा, न मोमिन। इस हैसियत से जो जितना कच्चा निकलेगा, उतना ही उसका ईमान और इस्लाम कच्चा होगा, भले ही दुनिया में उसकी गिनती बड़े-से-बड़े मुसलमानों में होती रही हो और उसे कितने ही बड़े दर्जे दिए गए हों। अल्लाह के यहाँ क़द्र सिर्फ़ इस चीज़ की है कि जो कुछ उसने आपको दिया है, वह सब कुछ

आपने उसकी राह में लगा दिया या नहीं। अगर आपने ऐसा कर दिया तो आपको वही हक़ दिया जाएगा जो वफ़ादारों और बन्दगी के हक़ अदा करनेवालों को दिया जाता है। और अगर आपने किसी चीज़ को अल्लाह की बन्दगी से अलग करके रखा तो आपका यह इक़रार कि आप मुस्लिम हुए, यानी यह कि आपने अपने आपको बिलकुल ख़ुदा के हवाले कर दिया, सिर्फ़ एक झूठा इक़रार होगा जिससे दुनिया के लोग धोखा खा सकते हैं, जिससे धोखा खाकर मुस्लिम सोसायटी आपको अपने अन्दर जगह दे सकती है, जिससे दुनिया में आपको मुसलमानों के-से सारे हुक़ूक़ मिल सकते हैं, लेकिन इससे धोखा खाकर अल्लाह अपने यहाँ आपको वफ़ादारों में जगह नहीं दे सकता।

यह क़ानूनी और हक़ीक़ी इस्लाम का फ़र्क़ जो मैंने आपके सामने बयान किया है, अगर आप इसपर ग़ौर करें तो आपको मालूम होगा कि इसके नतीजे सिर्फ़ आख़िरत ही में अलग-अलग नहीं होंगे, बल्कि दुनिया में भी एक बड़ी हद तक अलग-अलग हैं। दुनिया में जो मुसलमान पाए गए हैं या आज पाए जाते हैं, इन सबको दो क़िस्मों में बाँटा जा सकता है।

एक क़िस्म के मुसलमान वे हैं जो अल्लाह और उसके रसूल *(सल्ल.)* का इक़रार करके इस्लाम को अपना मज़हब समझकर मान लें, मगर अपने इस मज़हब को

अपनी कुल ज़िन्दगी का सिर्फ़ एक हिस्सा और एक शोबा ही बनाकर रखें। इस ख़ास हिस्से और शोबे में इस्लाम के साथ अक़ीदत हो, इबादत-गुज़ारियाँ हों, तसबीह व मुसल्ला हो, ख़ुदा का ज़िक्र हो, खाने-पीने और कुछ समाजी मामलों में परहेज़गारियाँ हों और वह सब कुछ हो जिसे मज़हबी काम और तरीक़ा कहा जाता है, मगर इस शोबे के सिवा उनकी ज़िन्दगी के तमाम दूसरे पहलू उनके मुस्लिम होने की हैसियत से अलग हों। वे मुहब्बत करें तो अपने नफ़्स या अपने मफ़ाद या अपने मुल्क व क़ौम या किसी और की ख़ातिर करें। वे दुशमनी करें और किसी से जंग करें तो वह भी ऐसे ही किसी दुनयावी या नफ़्सानी ताल्लुक़ की बिना पर करें। उनके कारोबार, उनके लेन-देन, उनके मामले और ताल्लुक़ात, उनका अपने बाल-बच्चों, अपने ख़ानदान, अपनी सोसायटी और अपने मामला करनेवाले लोगों के साथ बरताव सब-का-सब एक बड़ी हद तक दीन से आज़ाद और दुनयावी हैसियतों पर मुनहसिर हो। एक ज़मींदार की हैसियत से, एक ताजिर (व्यापारी) की हैसियत से, एक हुक्मराँ की हैसियत से, एक सिपाही की हैसियत से, एक पेशेवर की हैसियत से उनकी अपनी एक मुस्तक़िल हैसियत हो जिसका उनके मुसलमान होने की हैसियत से कोई ताल्लुक़ न हो। फिर इस क़िस्म के लोग मिलकर इजतिमाई तौर पर जो

तहज़ीबी, तालीमी और सियासी इदारे क़ायम करें वे भी उनके मुसलमान होने की हैसियत से— चाहे बहुत कम मुतास्सिर हो— जुड़े हों, लेकिन सच तो यह है कि उनको इस्लाम से कोई ताल्लुक़ न हो।

दूसरी क़िस्म के मुसलमान वे हैं जो अपनी पूरी शख़्सियत को और अपने सारे वुजूद को इस्लाम के अन्दर पूरी तरह दे दें। उनकी सारी हैसियतें उनके मुसलमान होने की हैसियत में गुम हो जाएँ। वे बाप हों तो मुसलमान की हैसियत से, बेटे हों तो मुसलमान होने की हैसियत से, शौहर या बीवी हों तो मुसलमान की हैसियत से। ताजिर, ज़मींदार, मज़दूर, मुलाज़िम या पेशेवर हों तो मुसलमान की हैसियत से। उनके जज़बे, उनकी ख़ाहिशें, उनके नज़रियात, उनके ख़यालात उनकी राएँ, उनकी नफ़रत और मुहब्बत, उनकी पसन्द और नापसन्द सब कुछ इस्लाम के ताबे (अधीन) हो। उनके दिल व दिमाग़ पर, उनकी आँखों और कानों पर, उनके पेट और उनकी शर्मगाहों पर और उनके हाथ-पाँव और उनके जिस्म व जान पर इस्लाम का पूरा क़बज़ा हो। न उनकी मुहब्बत इस्लाम से आज़ाद हो, न दुशमनी। जिससे मिलें इस्लाम के लिए मिलें और जिससे लड़ें इस्लाम के लिए लड़ें। किसी को दें तो इसलिए दें कि इस्लाम का तक़ाज़ा यही है कि उसे दिया जाए, और किसी से रोकें तो इसलिए रोकें कि इस्लाम यही कहता

है कि उससे रोका जाए। और उनका यह तरीक़ा सिर्फ़ उनकी निजी और इनफ़िरादी ज़िन्दगी तक ही न हो, बल्कि उनकी इजतिमाई ज़िन्दगी भी सरासर इस्लाम की बुनियाद ही पर क़ायम हो। एक जमाअत की हैसियत से उनकी हस्ती सिर्फ़ इस्लाम के लिए क़ायम हो और उनका सारा इजतिमाई बरताव इस्लाम के उसूलों पर ही मबनी हो।

ये दो क़िस्म के मुसलमान हक़ीक़त में बिलकुल एक-दूसरे से अलग हैं, चाहे क़ानूनी हैसियत से दोनों एक ही उम्मत में शामिल हों और दोनों के लिए मुसलमान लफ़्ज़ एक जैसा इस्तेमाल किया जाता हो। पहली क़िस्म के मुसलमानों का कोई कारनामा इस्लामी तारीख़ में ज़िक्र के क़ाबिल या फ़ख़्र के क़ाबिल नहीं है। उन्होंने हक़ीक़त में कोई ऐसा काम नहीं किया है जिसने दुनिया की तारीख़ पर कोई इस्लामी नक़्श छोड़ा हो। ज़मीन ने ऐसे मुसलमानों का बोझ कभी महसूस नहीं किया है। इस्लाम का अगर पतन हुआ है तो ऐसे ही लोगों की बदौलत हुआ है। मुस्लिम सोसायटी में ऐसे ही मुसलमानों की ज़्यादती हो जाने का नतीजा इस शक्ल में निकला कि दुनिया के निज़ामे-ज़िन्दगी की बागें कुफ़्र के क़ब्ज़े में चली गईं और मुसलमान उसके मातहत रहकर सिर्फ़ एक महदूद मज़हबी ज़िन्दगी की आज़ादी ही को काफ़ी समझने लगे। अल्लाह को ऐसे मुसलमान

हरगिज़ नहीं चाहिए थे। उसने अपने नबियों को दुनिया में इसलिए नहीं भेजा था, न ही अपनी किताबें इसलिए उतारी थीं कि सिर्फ़ इस तरीक़े के मुसलमान दुनिया में बना डाले जाएँ। दुनिया में ऐसे मुसलमानों के न होने से किसी हक़ीक़ी क़द्र व क़ीमत रखनेवाली चीज़ की कमी न थी जिसे पूरा करने के लिए वह्य और नुबुव्वत के सिलसिले को जारी करने की ज़रूरत पेश आती। हक़ीक़त में अल्लाह को जिस तरह के मुसलमान चाहिएँ, जिन्हें तैयार करने के लिए नबी भेजे गए और किताबें उतरी हैं और जिन्होंने इस्लामी नुक़्त-ए-नज़र (दृष्टिकोण) से भी कोई क़ाबिले-क़द्र काम किया है या आज कर सकते हैं, वे सिर्फ़ दूसरी ही क़िस्म के मुसलमान हैं।

यह चीज़ सिर्फ़ इस्लाम ही के लिए ख़ास नहीं है, बल्कि दुनिया में किसी मसलक का झण्डा भी ऐसी पैरवी करनेवालों के हाथों कभी बुलन्द नहीं हुआ है, जिन्होंने अपने मसलक के इक़रार और उसके उसूलों की पाबन्दी को अपनी कुल ज़िन्दगी के साथ सिर्फ़ ज़मीमा (परिशिष्ट) बनाकर रखा हो और जिनका जीना और मरना अपने मसलक के सिवा किसी और चीज़ के लिए हो। आज भी आप देख सकते हैं कि एक मसलक के हक़ीक़ी और सच्ची पैरवी करनेवाले सिर्फ़ वही लोग होते हैं जो दिल और जान से उसके वफ़ादार हैं,

जिन्होंने अपनी पूरी शख़्सियत को उसमें गुम कर दिया है और जो अपनी किसी चीज़ को, यहाँ तक कि अपनी जान और अपनी औलाद तक को, उसके मुक़ाबले में अज़ीज़ नहीं रखते। दुनिया का हर मसलक ऐसे ही पैरवी करनेवालों को माँगता है और अगर किसी मसलक को ग़लबा नसीब हो सकता है तो वह सिर्फ़ ऐसी ही पैरवी करनेवालों की बदौलत हो सकता है।

इस्लाम में और दूसरे मसलकों में फ़र्क़ यह है कि दूसरे मसलक अगर इनसानों से इस तरह की फ़नाइयत और फ़िदाइयत और वफ़ादारी माँगते हैं, तो यह हक़ीक़त में इनसान पर उनका हक़ नहीं है, बल्कि यह उनका इनसान से एक बेजा मुतालबा है। इसके ख़िलाफ़ इस्लाम अगर इनसान से इसकी माँग करता है तो यह उसका ऐन हक़ है। वे जिन चीज़ों के लिए इनसान से कहते हैं कि तू अपने आपको और अपनी ज़िन्दगी को और अपनी पूरी शख़्सियत को उनपर तज दे, उनमें से कोई भी ऐसी नहीं है जिसका हक़ीक़त में इनसान पर यह हक़ हो कि उसकी ख़ातिर इनसान अपनी किसी चीज़ को क़ुरबान करे। लेकिन इस्लाम जिस ख़ुदा के लिए इनसान से यह क़ुरबानी माँगता है, वह हक़ीक़त में इसका हक़ रखता है कि उसपर सब कुछ क़ुरबान कर दिया जाए। आसमानों और ज़मीन में जो कुछ है,

अल्लाह का है। इनसान खुद अल्लाह का है, जो कुछ इनसान के पास है, जो कुछ इनसान के अन्दर है, सब अल्लाह का है और जिन चीज़ों से इनसान दुनिया में काम लेता है, वे सब भी अल्लाह की हैं। इसलिए इनसाफ़ का यही तक़ाज़ा है और अक़्ल का भी यही तक़ाज़ा है कि जो कुछ अल्लाह का है, वह अल्लाह ही के लिए हो। दूसरों के लिए या खुद अपने फ़ायदे और अपने नफ़्स की पसन्द के लिए इनसान जो क़ुरबानी भी करता है, वह अस्ल में एक ख़ियानत है, अलावा इसके कि वह खुदा की इजाज़त से हो। और खुदा के लिए जो क़ुरबानी करता है, हक़ीक़त में वह हक़ का अदा करना है।

लेकिन इस पहलू से हटकर भी मुसलमानों के लिए उन लोगों के अमल के तरीक़ों में एक बड़ा सबक़ है जो अपने झूठे मसलकों के लिए और अपने नफ़्स के झूठे माबूदों के लिए अपना सब कुछ क़ुरबान कर रहे हैं और साबित-क़दमी का सुबूत दे रहे हैं, जिसकी नज़ीर मुशकिल ही से इनसानी तारीख़ों में मिलती है। कितनी अजीब बात होगी अगर बातिल के लिए इनसानों से ऐसी कुछ फ़िदाइयत और फ़नाइयत ज़ुहूर में आए और हक़ के लिए उसका हज़ारवाँ हिस्सा भी न हो सके।

ईमान और इस्लाम की यह कसौटी जो इस आयत और इस हदीस में बयान हुई है, मैं चाहता हूँ कि हम

सब अपने आपको इसपर परखकर देखें और इसकी रौशनी में अपने को जाँचें-परखें। अगर आप कहते हैं कि आपने इस्लाम क़बूल किया और ईमान ले आए तो देखिए कि क्या सचमुच में आपका जीना और मरना खुदा के लिए है? क्या आप इसी लिए जी रहे हैं और आपके दिल और दिमाग़ की सारी क़ाबिलियतें, आपके जिस्म और जान की सारी ताक़तें, आपका वक़्त और आपकी मेहनतें क्या इसी कोशिश में लग रही हैं कि खुदा की मरज़ी आपके हाथों पूरी हो और आपके ज़रीए से वह काम अंजाम पाए जो खुदा अपनी मुस्लिम उम्मत से लेना चाहता है? फिर क्या आपने अपनी इताअत और बन्दगी को खुदा ही के लिए ख़ास कर दिया है? क्या नफ़्स की बन्दगी, ख़ानदान, बिरादरी, दोस्तों, सोसायटी और हुकूमत की बन्दगी आपकी ज़िन्दगी से बिलकुल ख़ारिज हो चुकी है? क्या आपने अपनी पसन्द और नापसन्द को पूरी तरह अल्लाह की खुशी के ताबे (अधीन) कर दिया है? फिर देखिए कि आप वाक़ई जिससे मुहब्बत करते हैं, अल्लाह के लिए करते हैं? जिससे नफ़रत करते हैं, अल्लाह के लिए करते हैं? और इस नफ़रत और मुहब्बत में आपकी नफ़्सानियत का कोई हिस्सा शामिल नहीं है? फिर क्या आपका देना और रोकना भी खुदा के लिए हो चुका है? अपने पेट और अपने नफ़्स समेत दुनिया में आप जिसको जो कुछ

दे रहे हैं क्या इसलिए दे रहे हैं कि अल्लाह ने उसका हक़ मुक़र्रर किया है और उसको देने से सिर्फ़ अल्लाह की ख़ुशी आपको मतलूब है? और इसी तरह जिससे आप जो कुछ रोक रहे हैं, वह भी इसी लिए रोक रहे हैं कि अल्लाह ने उसे रोकने का हुक्म दिया है और उसके रोकने में आपको अल्लाह की ख़ुशनूदी हासिल होने की तमन्ना है? अगर आप यह कैफ़ियत अपने अन्दर पाते हैं तो अल्लाह का शुक्र अदा कीजिए कि उसने आपपर ईमान की नेमत पूरी कर दी, और अगर इस हैसियत से आप अपने अन्दर कमी महसूस करते हैं तो सारी फ़िक्रें छोड़कर बस इसी कमी को पूरा करने की फ़िक्र कीजिए और तमाम कोशिशों और मेहनतों को इसी पर मरकूज़ (केन्द्रित) कर दीजिए, क्योंकि इसी कमी के पूरा होने पर दुनिया में आपकी भलाई और आख़िरत में आपकी नजात का दारोमदार है। आप दुनिया में चाहे कुछ भी हासिल कर लें, उसके हुसूल से उस नुक़सान की तलाफ़ी (भरपाई) नहीं हो सकती जो इस कमी की बदौलत आपको पहुँचेगा। लेकिन अगर यह कमी आपने पूरी कर ली तो चाहे आपको दुनिया में कुछ हासिल न हो, फिर भी आप घाटे में न रहेंगे।

यह कसौटी इस ग़रज़ के लिए नहीं है कि इसपर आप दूसरों को परखें और उनके मोमिन या मुनाफ़िक़

और मुस्लिम या काफ़िर होने का फ़ैसला करें। बल्कि यह कसौटी इस ग़रज़ के लिए है कि आप उसपर खुद अपने आपको परखें और आख़िरत की अदालत में जाने से पहले अपना खोट मालूम करके यहीं उसे दूर करने की फ़िक्र करें। आपको फ़िक्र इस बात की न होनी चाहिए कि दुनिया में मुफ़्ती और क़ाज़ी आपको क्या क़रार देते हैं, बल्कि इसकी होनी चाहिए कि 'अह्कमुल-हाकिमीन' और 'आलिमुल ग़ैबि वश्शहादः' आपको क्या क़रार देगा। आप इसपर मुत्मइन न हों कि यहाँ आपका नाम मुसलमानों के रजिस्टर में लिखा है, फ़िक्र इस बात की कीजिए कि अल्लाह के दफ़्तर में आप क्या लिखे जाते हैं? सारी दुनिया भी आपको इस्लाम और ईमान की सनद दे दें तो कुछ हासिल नहीं। फ़ैसला जिस खुदा के हाथ में है उसके यहाँ मुनाफ़िक़ के बजाय मोमिन, नाफ़रमान के बजाय फ़रमाँबरदार और बेवफ़ा की जगह वफ़ादार क़रार पाना असूल कामयाबी है।

☆☆☆